''प्राचीन भारतीय अभिलेखो एवं प्रशस्तियों में वैदिक शिक्षा का स्वरूप''

''भारतीय संस्कृति ज्ञान गरिमा का अद्भुत स्वरूप है - प्राचीन काल से ही ज्ञान, बुद्धि विवेक और अध्यात्म का स्वरूप यहाँ अनवरत क्रम में चलता रहा है - प्राचीन काल में काशी विद्या का केन्द्र था दसवी सदी में, गाहड़वाल ताम्रपत्र कमौली नामक स्थान से प्राप्त हुये हैं - जिसमें विद्वान ब्राह्मणों को दान देने का विवरण मिलता है - राजा की ओर से अध्यापक तथा विद्यार्थियों को पठन पाठन के लिए सहायता मिलती रही। एपिग्राफिया इंडिया (मागल)। काठियावाड़ में वलभी भी प्रसिद्ध विद्या केन्द्र था -जहाँ से अधिक मात्रा में अन्तरराष्ट्रीय व्यापार होता था-बलभी के स्नातक ऊँचे पद पर नियुक्त किए जाते थे - गंगाघाटी से ब्राह्मण अपने पुत्रों को विद्याभ्यास के लिए वहाँ भेजते रहे -

अन्तवेद्यामभूत्पूर्व वसुदत्त इति द्विज:
गतुं प्रववृते विद्या प्राप्ते बलभीपुरम्

वलभी के धनीमानी श्रेष्ठी इस विश्वविद्यालय को अधिक सहायता दिया करते थे - यहां के मैत्रर नरेश साधारण व्यय के अतिरिक्त पुस्तकों के लिए भी दान देते थे - जो लेख से विदित होता है - ''**सद्धर्मस्य पुस्तको पचर्यार्थम्**'' (साउथ इंडियन एपीग्राफी) मैत्रकों के पिछले उत्तराधिकारी भी वलमी विश्वविद्यालय को पर्याप्त आर्थिक सहायता करते रहे।

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजा के मंत्री नारायण ने सलोत्गी (बीजापुर) मे एक देवालय का निर्माण कराया था जो १२ वीं सदीमें वैदिक शिक्षा का केन्द्र था -उस स्थान पर विद्यार्थियों के रहने के लिए अनेक भवन बने थे - वहाँ की प्रशस्ति में वर्णन आता है कि दीपक, भोजन,तथा आवास के लिए ५०० निवर्तन भूमिदान में दी गई थी (एपीग्राफिया इंडिया)

''**तेनेयं कारिता शाला श्री विशाला मनोरमा अत्र विद्यार्थिन: सन्ति नाना जनपदोद्भवा शाला विद्यार्थी संघाय दत्तवान्भूमिमुत्तमम्**

अन्य लेखों से भी पता चलता है कि दक्षिण में कई विद्यापीठ राजकीय सहायता पर चलते थे। और देवालय शिक्षा के केन्द्र हो गये थे। १२ वी सदी में दक्षिण अरकाट जिले में एन्नायिरम विद्यापीठ (साउथ इ.ए.रि.१८१८ पृ.१४५)तथा चिड़गलपुर (मद्रास के करीब) में व्यंकटेश पेरूमल देवालय महत्वपूर्ण संस्थायें थी।११ वीं सदी के लेख में बीजापुर के विद्यार्थियों का वर्णन है कि आचार्य योगश्वर पंडित के शिष्यों को शिक्षा तथा भोजन के लिये १२०० एकड़ भूमि दान में दी गई थी-अग्रहारदान शिक्षाकी उन्नति

में सहायक थे तथा आर्थिक चिन्ता से विद्यालय मुक्त रहता था - जिस गावं में पंडितों के पास ज्ञान पिपासु लोग आते थे-उसे भी दान दिया जाता था-शिक्षा केन्द्रों, छात्रावालों, औषधि भोजन हस्तलिखित पुस्तक आदि का सहयोग चलता रहता था। प्राचीन अभिलेखों के अनुसार वैदिक शाखा का नाम दान के समय लिया जाता था।

यज्ञों के विधिवत सम्पन्न होने से यह सिद्ध होता है कि वैदिक शिक्षा का प्रचलन समाज में था - उपनयन संस्कार के पश्चात विद्यार्थी गुरूगृह में विद्याभ्यास करता रहा। पूर्वमध्य (७००-१२००) में उपनयन की अवस्था में समानता न रही। प्राचीन गुरूकुल की परिपाटी छिन्न भिन्न हो गई थी और विद्यार्थीगण मंदिर या मठ अथवा

विहार में शिक्षा पाने लगे - इस काल के उत्कीर्ण अभिलेख तथा दानपत्र शिक्षा के सभी बातों पर प्रकाश डालते हैं - दान व्यक्तिगत न रहकर संस्थाओं से सम्बन्धित कर दिए गए विद्यार्थी वैदिक शाखा के ज्ञाता कहे गए हैं यानी किसी सम्पूर्ण वेद का पठन पाठन भी सम्भव न था। गम्भीर अध्ययन के कारण विद्यार्थी केवल एक शाखा में ही पांडित्य प्राप्त कर सकता था।

पूर्व मध्ययुग के अभिलेखों का विवेचन यह बतलाता है - कि वेद वेदांग मे अतिरिक्त दर्शन, उपवेद तथा इतिहास का भी पठन पाठन होता रहा-' दानग्राही के गुणों का वर्णन करते समय कई विषयोंके नाम आते हैं। ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र का उल्लेख मिलता है- जिसके अध्ययन के पश्चात् वह व्यक्ति राजकीय विभाग में पदाधिकारी हो जाता था-इसलिये वेदांग शिक्षा, निरूक्त, छंद, व्याकरण, कल्प, धर्मशास्त्र तथा ज्योतिष का अध्ययन अध्यापन प्रमुख हो गया उस युग के लेखों में चारों वेद उनकी विभिन्न शाखाएँ वेदांग और षडदर्शन के नाम मिलते हैं - यजमान राजपूताना के लेखों में यजुर्वेद के अनुसार यहाँ करने की चर्चा की गई है - बंगाल के सेन नरेश के लेखों में भी यही चर्चा हैं - समस्त उत्तरी भारत में वैदिक यज्ञ तथा वेदों का अध्ययन होता था -

दक्षिण भारत के लेखों में भी वैदिक शाखाओं के नाम से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दक्षिण में वैदिक अध्ययन की परिपाटी समान रूप से वर्तमान थी - प्रतिहार -चन्देल- परमार तथा बंगाल के राजाओं के अभिलेखो में अनेक वैदिक शाखाओं के नाम आते हैं -

१) कलहा ताम्रपत्र (गोरखपुर उत्तरप्रदेश) में छांदोग्य, वाजसनेय,तथा माध्यन्दिन शाखाध्यायी ब्राह्मणों के नाम उल्लिखित हैं-

२) मध्यप्रदेश के चेदिवंश के लेखों में आश्वलायन शांखायन, कठ, कौथुमी तथा राणायनीय शाखाओं के नाम मिलते हैं

३) मालवा के लेख में माध्यन्दिन आश्वलायन तथा कौथुमी के नाम प्राप्त हुए हैं

४) कन्नौज के राजा भोज का ताम्रपत्र तथा गाहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र के दानपत्र में आश्वालायन तथा वाजसनेय शाखाध्यायी ब्राह्मणों का वर्णन आया है

५) पालवंश के तथा सेन वंश के राजाओं मे यही नाम वाले दानपत्र मिलते हैं

६) लक्ष्मण सेन के अभिलेखों में यजुर्वेद, सामवेद और ऋग्वेद तथा अथर्व की पिपालाद शाखा का नाम भी मिलता है -

ऋग्वेद की शाखाएँ - आश्वालायन - शाङ्खायन
शुक्ल यजुर्वेद - माध्यन्दिन काण्व तथा वाजसनेय
कृष्ण यजुर्वेद - मैत्रायिणी कंठ तथा तैत्तिरीय
सामवेद - कौथुमी व राणायनीय
अथर्व - पिप्पलाद

इन शाखाओं के नाम तथा वर्गीकरण से पता चलता है कि ऋग् साम तथा यजुर्वेद का अध्ययन उत्तरी भारत के अधिक भागों में होता था-परन्तु पिप्पलाद का अध्ययन केवल पूर्वी भारत में सीमित था- दक्षिण भारत के लेख यही बातलाते हैं कि अथर्व के सिवाय अन्य तीन वेदों का अध्ययन व अध्यापन पूर्व मध्ययुग से हो रहा था -इसकी पुष्टि निम्नलिखित उद्धरण से होती है -

''ब्रह्म त्रिक्रमोर्कश्च विष्णु देवस्तथा पर
तथा महिर देवस्य चात्वारो वहवृचोत्तमा(ऋग्वेद)
एवं कपर्दोपाध्यायो भास्करो मधुसूदनः
वेदगर्भश्च चत्वारो यजुर्वेदस्य पारगाः (यजुर्वेद)
तथा भास्कर देवश्च स्थिरोपाध्याय एव च
त्रैलोक्यहन्सो मोड चत्वारः सामपारगाः (सामवेद)

समस्त अभिलेखों का परीक्षण यह बतलाता है कि अधिकतर ब्राह्मण तीन ही वेद (ऋक यजु व साम') पढ़ते या पढ़ाते थे - जिस कारण द्विवेदी या त्रिवेदी की पदवी से पुकारे जाते थे। शतपथ ब्राह्मण (४/६/७) में भी तीन वेदों की प्रधानता उल्लिखित है (त्रयीवैविद्या ऋचः यजुशिसामानि)

मध्ययुग में वेदांग का नाम भी लेखों में उल्लिखित है, जिन विषयों को पढ़ कर व्यक्ति पदाधिकारी का आसन सुशोभित करता था। बंगाल के लेख में वेद वेदांग पारंगत ब्राह्मणों के नाम आते हैं तथा बैरकपुर दानपत्र में षडाङ्गाध्यायिने ब्राह्मण को अग्रहार देने का वर्णन मिलता है - गोविन्दपुर के ताम्र पत्र में निम्न श्लोक द्वारा वेदांग के छः विषयों के अध्ययन की चर्चा की गयी है -

''सत्कल्प प्रवणाः श्रुति प्रणयिनः शिक्षाजिरून्दासिताः
सज्ज्योतिषर्गतियो निरूक्त विशदाश्छन्दोविधौसाधवः
ख्याता व्याकरण पुत्रेण विदुषामत्युच्यधिशीलना
वेदाङ्गप्रतिमा षडेव भुवनेते बिभ्रति भ्रातरः

इसके अतिरिक्त, गान्धर्ववेद आयुर्वेद, तथा धनुर्वेद का भी अध्ययन कराया जाता था।

संस्कृत साहित्य की शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है ईसवी सन् की दूसरी सदी के प्रायः अधिक लेख जनता के लिए संस्कृत में ही लिखे गए। इतना ही नहीं गुप्तकाल में तो मुद्रालेख भी छंदबद्ध संस्कृत में अंकित कराए गए। अतएव यह कहना उचित होगा कि संस्कृत भाषा की शिक्षा सभी वर्गो को दी जाती थी।

- डॉ.राजेश कुमार उपाध्याय
''नार्मदेय'' श्रीकृष्णर्जुन सदन,
शहडोल - म.प्र., राजेन्द्र टॉकीज के पीछे